ISSN 2454 - 5163

प्रकाशन तिथि : 26 अक्टूबर 2018, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 37, अंक 4, कुल पृष्ठ 28

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

तमिलनाडु स्थित
दिगम्बर जैनतीर्थ क्षेत्र,
जिनजी पर्वत/तिरुनाथकुण्ड्र

वीतराग-विज्ञान (423)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	**10200**

धर्मात्मा का कार्य

भाई ! पर के कार्य तेरे आत्मा में नहीं हैं और राग-द्वेष-मोह के कार्य भी तेरे स्वभाव में नहीं हैं; किन्तु अपनी शक्ति में से निर्मल पर्याय को प्राप्त कर वही तेरा कार्य है। सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धपद तक के पद प्राप्त करने की शक्ति तेरे आत्मा में है और वही तेरे कार्य हैं, इसके सिवा बाह्य में महान राजपद या इन्द्रपद आदि की प्राप्ति हो वह कहीं तेरे आत्मा का कार्य नहीं है। धर्मात्मा जानता है कि मैं तो अपने ज्ञान-आनन्द स्वभावमय हूँ और उसमें से प्राप्त होने वाली अवस्था ही मेरा कार्य है, इसके अतिरिक्त रागादि विकार भी मेरा कार्य नहीं है तो फिर उस विकार के फलरूप बाह्य संयोगों में तो मेरा कार्य कैसे होगा? मेरे स्वभाव में से सिद्धपद प्रगट हो वही मेरा प्रिय कार्य है। ''कर्ता का इष्ट सो कर्म'' धर्मी कर्ता का इष्ट तो उसकी अपनी निर्मल परिणति ही है; रागादि वह धर्मी का इष्ट नहीं है इसलिये वह उसका कर्म नहीं है। श्रद्धा में परमशुद्ध ऐसे चिदानन्द स्वभाव को ही इष्ट करके उसमें से सम्यग्दर्शनादि निर्मलदशा प्राप्त करके सिद्धपद की ओर कदम बढाये हैं, वही धर्मात्मा का इष्ट कार्य है।

– आत्मप्रसिद्धि, पृष्ठ 492-493

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 37 (वीर नि. संवत् - 2544) 423 अंक : 4

तब पछितैहै प्राणी...

आया रे बुढापा मानी, सुधि बुधि बिसरानी।। टेक।।
श्रवन की शक्ति घटी, चाल चले अटपटी।
देह लटी, भूख घटी, लोचन झरत पानी।।
आया रे बुढापा मानी, सुधि बुधि बिसरानी।।1।।
दांतन की पंक्ति टूटी, हाड़न की संधि छूटी।
काया की नगरि लूटी, जात नहिं पहिचानी।।
आया रे बुढापा मानी, सुधि बुधि बिसरानी।। 2।।
बालों ने वरन फेरा, रोग ने शरीर घेरा।
पुत्र हू न आवैं नेरा, औरों की कहा कहानी।।
आया रे बुढापा मानी, सुधि बुधि बिसरानी।। 3।।
भूधर समझ अब, स्वहित करैगो कब।
यह गति ह्वै जब, तब पछितैहै प्राणी।।
आया रे बुढापा मानी, सुधि बुधि बिसरानी।। 4।।

– कविवर पण्डित भूधरदासजी

जहरीला सर्प भी रात्रिभोजन नहीं करता

सन् 5-7-1966 को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी ने श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित योगसार गाथा 73 पर प्रवचन करते हुए कहा :-

अरे! पशु को भी आत्मश्रद्धान-ज्ञान हो सकता है। जिसे खाने को एक कण न मिले, पीने को पानी की बूँद न मिले और बड़ी रातों में तो बारह-बारह, चौदह-चौदह घण्टे स्थान परिवर्तन बिना जो चतुर्विध आहार के त्यागपूर्वक रहते हैं - ऐसे चिड़िया, मोर इत्यादि पक्षी भी शुद्ध चिदानन्द स्वरूपी आत्मा की रुचि कर लेते हैं, शुद्धोपयोग का आनन्द ले लेते हैं। देखो! भगवान के समवशरण में तो छोटे-छोटे मेंढक और बड़े-बड़े सिंह, बाघ, मगरमच्छ, नाग इत्यादि सभी जीव जाते हैं।

अहो! अन्य सर्प तो रात्रि में इधर-उधर घूमते हैं; परन्तु जिसे आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान हुआ, वह जहरीला सर्प भी रात्रिभोजन नहीं करता।

जिन्हें आत्मा की रुचि नहीं, आत्मस्वरूप का भान नहीं और पुण्य पाप का प्रेम है - ऐसे चक्रवर्ती और अरबपति सेठ महलों में बैठकर सोने के झूले पर झूलते हुए भी अकेली आकुलता का ही वेदन करते हैं; क्योंकि उन्हें अपनी आत्मा की रुचि तो है ही नहीं।

और उपरोक्त परिस्थिति वाला पक्षी, जिसे ज्ञानानन्दस्वरूप की दृष्टि और रुचि है, जो पुण्य-पाप को हेय मानता है, राग को आदरणीय नहीं मानकर अन्तर में शुद्धोपयोग का व्यापार कर लेता है, वह अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करता है। अरे! ज्ञानी को तो नरक में भी आनन्द है। कहा है न कि :-

'बाहर नारककृत दुख भोगे, अन्तर सुखरस गटागटी'

अहो हो! नारकी; जिसे बाहर में भयंकर प्रतिकूल परिस्थिति, केवल पीड़ा ही पीड़ा, रोग ही रोग है, उसे भी अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ के श्रद्धान-ज्ञान से अतीन्द्रिय आनन्द आ जाता है, निराकुलता का वेदन कर लेता है और अज्ञानी महलों में बैठकर भी इसके अभाव में केवल आकुलता का वेदन करते हैं। **(वीतराग-विज्ञान, जनवरी-1984)**

सम्पादकीय

कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन

(गतांक से आगे ...)

जो संसार में प्रवेश कराये ?

(८६-८७-८८)

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि॥

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं॥

तम्हा दु कुसीलेहि य रागं मा कुणह मा व संसग्गं।
साहीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण॥

(हरिगीत)

सुशील हैं शुभकर्म और अशुभ करम कुशील हैं।
संसार के हैं हेतु वे कैसे कहें कि सुशील हैं?॥

ज्यों लोह बेड़ी बाँधती त्यों स्वर्ण की भी बाँधती।
इस भाँति ही शुभ-अशुभ दोनों कर्म बेड़ी बाँधती॥

दुःशील के संसर्ग से स्वाधीनता का नाश हो।
दुःशील से संसर्ग एवं राग को तुम मत करो॥

अज्ञानीजनों को सम्बोधित करते हुए आचार्य कहते हैं कि तुम ऐसा जानते हो कि शुभकर्म सुशील हैं और अशुभकर्म कुशील है, पर **जो शुभाशुभ कर्म संसार में प्रवेश कराते हैं, उनमें से कोई भी कर्म सुशील कैसे हो सकता है ?**

तात्पर्य यह है कि शुभ और अशुभ दोनों ही कर्म कुशील ही हैं, कोई भी

कर्म सुशील नहीं होता।

जिसप्रकार लोहे की बेड़ी पुरुष को बाँधती है, उसीप्रकार सोने की बेड़ी भी बाँधती ही है। इसीप्रकार जैसे अशुभकर्म (पाप) जीव को बाँधता है, वैसे ही शुभकर्म (पुण्य) भी जीव को बाँधता ही है। **बंधन में डालने की अपेक्षा पुण्य-पाप दोनों कर्म समान ही हैं।**

सचेत करते हुए आचार्य कहते हैं कि **पुण्य-पाप इन दोनों कुशीलों के साथ राग मत करो, संसर्ग भी मत करो; क्योंकि कुशील के साथ संसर्ग और राग करने से स्वाधीनता का नाश होता है।**

ये गाथायें समयसार परमागम के पुण्य-पाप अधिकार की १४५, १४६ एवं १४७वीं गाथाएँ हैं। इनमें कहा गया है कि शुभ कर्म भी सुशील नहीं हो सकता; क्योंकि वह संसार में प्रवेश कराता है। जिसप्रकार लोहे की बेड़ी के समान सोने की बेड़ी भी बाँधती है; उसीप्रकार पाप के समान पुण्य भी जीव को बाँधता है। अत: पाप के समान पुण्य को भी कुशील जानकर पुण्य और पाप से राग व संसर्ग मत करो।

लौकिकजन ऐसा मानते हैं कि शुभकर्म सुशील हैं, अच्छे हैं, करने योग्य हैं और अशुभकर्म कुशील हैं, बुरे हैं, त्यागने योग्य हैं; किन्तु ज्ञानीजन कहते हैं कि जब शुभ और अशुभ - दोनों ही कर्म हैं, कर्म होने से संसार के हेतु हैं, संसार-सागर में डुबानेवाले हैं तो फिर उनमें से एक शुभकर्म को सुशील कैसे माना जा सकता है ? **जो संसार में प्रवेश कराये, वह सुशील कैसे हो सकता है ?**

इन गाथाओं का भाव आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है-

''जिसप्रकार सोने और लोहे की बेड़ी बिना किसी अन्तर के पुरुष को बाँधती है; क्योंकि बंधन की अपेक्षा उनमें कोई अन्तर नहीं है। उसीप्रकार शुभ और अशुभ कर्म बिना किसी अन्तर के जीव को बाँधते हैं; क्योंकि बंधभाव की अपेक्षा उनमें कोई अन्तर नहीं है।

जिसप्रकार मनोरम हो या अमनोरम, पर कुशील हथिनीरूपी कुट्टनी के साथ राग और संसर्ग करना हाथी के लिए बंधन का कारण होता है; उसीप्रकार शुभ हों या अशुभ, पर कुशील कर्मों के साथ राग और संसर्ग करना जीव के लिए बंधन का कारण होता है। इसकारण यहाँ शुभाशुभ कर्मों के साथ राग और संसर्ग करने का निषेध किया गया है।

जिसप्रकार कोई जंगल का कुशल हाथी अपने बंधन के लिए निकट आती हुई सुन्दर मुखवाली मनोरम अथवा अमनोरम हथिनीरूपी कुट्टनी को परमार्थत: बुरी जानकर उसके साथ राग या संसर्ग नहीं करता; उसीप्रकार आत्मा अरागी ज्ञानी होता हुआ अपने बंध के लिए समीप आती हुई (उदय में आती हुई) मनोरम या अमनोरम (शुभ या अशुभ) सभी कर्मप्रकृतियों को परमार्थत: बुरी जानकर उनके साथ राग तथा संसर्ग नहीं करता।''

जंगली हाथियों को पकड़ने के लिए जंगल में एक बहुत बड़ा गहरा गड्ढा खोदा जाता है। उसे ढककर ऊपर मिट्टी डालकर दूब-घास और झाड़ियाँ डाल दी जाती हैं, जिससे वह ठोस जमीन ही प्रतीत हो।

जंगली हाथियों को फँसाने के लिए महावत लोग एक चतुर हथिनी को प्रशिक्षित (ट्रेण्ड) करते हैं। वह हथिनी अपनी कामुक चेष्टाओं से जंगली हाथियों को आकर्षित करती है, मोहित करती है और अपने पीछे-पीछे आने के लिए प्रेरित करती है। उनसे नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करती हुई वह हथिनी उन्हें उस गड्ढे के समीप लाती है।

तेजी से भागती हुई वह कुट्टनी हथिनी तो जानकार होने से उस गड्ढे से बचकर निकल जाती है, पर तेजी से पीछा करनेवाला कामुक हाथी भागता हुआ उस गड्ढे में गिर जाता है। इसप्रकार वह अपनी स्वाधीनता खो देता है, बंधन में पड़ जाता है।

वह कुट्टनी हथिनी चाहे सुन्दर हो, चाहे कुरूप हो; पर उसके मोह में

पड़नेवाला हाथी बंधन को प्राप्त होता ही है।

उक्त उदाहरण के माध्यम से यहाँ यह समझाया जा रहा है कि कर्म चाहे शुभ हों या अशुभ, पुण्यरूप हों या पापरूप; उनसे राग करनेवाले, उन्हें करने योग्य माननेवाले, उन्हें उपादेय माननेवाले संसाररूपी गड्ढे में गिरते हैं, फँसते हैं, बंधन को प्राप्त होते हैं। अत: कर्म चाहे शुभ हों या अशुभ, पुण्यरूप हों या पापरूप – दोनों से ही राग व संसर्ग नहीं करना चाहिए, उन्हें उपादेय नहीं मानना चाहिए।

मोही हाथी के कुरूप हथिनी की अपेक्षा सुरूप (सुन्दर) हथिनी पर मोहित होने के अवसर अधिक हैं; इसकारण उक्त कुट्टनी हथिनी का कुरूप होने की अपेक्षा सुरूप होना अधिक खतरनाक है।

उसीप्रकार **मोही जीव के पापकर्मों की अपेक्षा पुण्यकर्मों पर मोहित होने के अवसर अधिक हैं; इसकारण पुण्य के संदर्भ में अधिक सावधानी अपेक्षित है।**

आचार्य जयसेन इन गाथाओं का अर्थ करते हुए लिखते हैं –

''रूपलावण्य, सौभाग्य; कामदेव, इन्द्र, अहमिन्द्र; ख्याति, लाभ और पूजादि की भावना से, भोगों की आकांक्षा एवं निदान से जो व्यक्ति व्रत, तपश्चरण, दान, पूजादि करता है; वह पुरुष व्रतादिक को उसीप्रकार व्यर्थ खोता है, जिसप्रकार कोई व्यक्ति छाछ के लिए रत्न बेचता है, राख (भस्म) के लिए रत्नराशि को जलाता है, डोरे के लिए मोतियों के हार को पीस देता है, कोदों (कोद्रव) नाम के अति तुच्छ अनाज के उत्पादन के लिए अगर चन्दन के वन को काटता है; किन्तु **शुद्धात्मानुभूति की साधना के लिए जो बाह्य व्रत, तप, दान और पूजादिक करता है, वह परम्परा से मोक्ष को प्राप्त करता है – ऐसा भावार्थ है।**

इसलिए कुशीलवाले शुभाशुभकर्मों के साथ मानसिक राग मत करो और बहिरंग वचन-कायगत संसर्ग भी मत करो; क्योंकि कुशील के साथ संसर्ग और राग करने से अपनी स्वतंत्रता का, निर्विकल्प समाधि का, प्रयोजनभूत कार्य का और स्वाधीन आत्मसुख का नाश नियम से होता है।''

उक्त उदाहरणों से यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है कि मुक्ति के मार्ग में पाप के समान पुण्य भी पूर्णत: हेय है।

इसप्रकार यहाँ आचार्यदेव पाप के समान पुण्य को भी हेय बताकर उससे विरक्त करने का प्रयास कर रहे हैं।

पुण्य और पाप एक

(८९)

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो॥

(हरिगीत)

पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है – जो न माने बात ये।
संसार-सागर में भ्रमे मद-मोह से आच्छन्न वे॥

इसप्रकार जो व्यक्ति 'पुण्य और पाप में कोई अन्तर नहीं है' – ऐसा नहीं मानता है अर्थात् उन्हें समानरूप से हेय नहीं मानता है; वह मोह से आच्छन्न प्राणी अपार घोर संसार में अनन्तकाल तक परिभ्रमण करताहै।

यह गाथा प्रवचनसार परमागम के ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार की ७७वीं है। इसमें कहा गया है कि जो यह नहीं मानता कि पुण्य और पाप समान ही हैं; वह अनन्तकाल तक संसार सागर में भ्रमण करेगा।

इस गाथा का भाव आचार्य अमृतचन्द्र तत्त्वप्रदीपिका टीका में इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''विगत गाथाओं में प्रतिपादित वस्तुस्वरूप के अनुसार जब परमार्थ से शुभाशुभ उपयोग में और सांसारिक सुख-दु:ख में द्वैत नहीं ठहरता; तब पुण्य और पाप में द्वैत कैसे ठहर सकता है ? क्योंकि पुण्य और पाप – दोनों में ही अनात्मधर्मत्व समान है।

तात्पर्य यह है कि पुण्य और पाप – दोनों ही आत्मा के धर्मनहीं; इसलिए आत्मधर्म के आराधकों को दोनों ही समानरूप से अधर्म हैं।

ऐसा होने पर भी जो जीव उन दोनों में सुवर्ण और लोहे की बेड़ी की भाँति अन्तर मानता हुआ अहमिन्द्रपदादि सम्पदाओं के कारणभूत धर्मानुराग

पर अत्यंत निर्भररूप सेअवलम्बितहै; कर्मोपाधि से विकृत चित्तवाले उस जीव ने शुद्धोपयोग शक्ति का तिरस्कार किया है; इसलिए वह जीव संसारपर्यन्त (जबतक संसार है, तबतक) शारीरिक दुख का ही अनुभव करता है।''

भले ही व्यवहारनय या अशुद्धनिश्चयनय से पुण्य-पापकर्म, पुण्य-पापभाव और उनके फल में प्राप्त होनेवाले सुख-दुख में अन्तर बताया गया हो; तथापि निश्चय से परमसत्य बात तो यही है कि जो व्यक्ति पंचेन्द्रिय विषयों में सुख मानता हुआ जबतक पुण्य में उपादेय बुद्धि रखेगा, उसे पाप के समान ही बंध का कारण नहीं मानेगा; तबतक वह जीव इस मिथ्या मान्यता के कारण संसार में ही परिभ्रमण करेगा।

ध्यान देने की बात यह है कि **यहाँ जिस पुण्यभाव को पापभाव के समान हेय बताया जा रहा है; वह अज्ञानी गृहस्थों के होनेवाले शुभभाव रूप पुण्य नहीं है; अपितु जिस पुण्य से अहमिन्द्रादि पदों की प्राप्ति होती है, ऐसे चौथे काल के मुनिराजों को होनेवाले पुण्य की बात है; क्योंकि गृहस्थ तो अहमिन्द्रादि पद प्राप्त ही नहीं करते हैं। गृहस्थ तो सोलहवें स्वर्ग के ऊपर जाते ही नहीं हैं; वे कल्पोपपन्न ही होते हैं; कल्पातीतनहीं।**

इसीप्रकार पंचमकाल में भी कोई अहमिन्द्र पद प्राप्त नहीं करता, इसलिए यह बात चौथे काल के मुनिराजों के शुभभाव की ही है। तात्पर्य यह है कि यहाँ चौथे काल के मुनिराजों के पुण्यभाव को भी पाप भाव के समान हेय बताया गया है तथा इस बात को स्वीकार नहीं करने वालों को अनंतकाल तक भवभ्रमण करना होगा - यह कहा गया है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि पुण्य-पाप में अन्तर माननेरूप छोटे से अपराध की इतनी बड़ी सजा कि वह अनंत कालतक संसार में भ्रमण करेगा। यह ककड़ी के चोर को कटार मारने जैसा अन्याय नहीं है क्या?

अरे भाई ! पुण्य और पाप में अन्तर माननेवाला ककड़ी का चोर नहीं है, छोटा-मोटा दोषी नहीं है; अपितु सात तत्त्व संबंधी भूल करनेवाला बड़ा अपराधी

है, मिथ्यात्वी है और मिथ्यात्व का फल तो अनंत संसार है ही।

हिंसादि पाप करनेवाला नरक में जाता है, पशु-पक्षी होता है और अहिंसादि पुण्यभावों को करनेवाला मनुष्य एवं देव होता है; इसप्रकार हिंसादि पापभावों का फल नरकादि व पुण्यभावों का फल स्वर्गादि है; किंतु **मिथ्यात्वादि का फल निगोद है और सम्यक्त्वादि का फलमोक्षहै।**

पुण्य में उपादेयबुद्धि, सुखबुद्धि तत्त्वसंबंधी भूल होने से मिथ्यात्व का महा भयंकर पाप है; यही कारण है कि इसप्रकार की भूल करनेवाले तबतक संसार में परिभ्रमण करते हैं, जबतक कि वे अपनी इस भूल को सुधार नहीं लेते। **अत: हम सबका भला इसी में है कि हम अपनी भूल सुधार कर इस महापाप से बचें। इसे छोटी-मोटी भूल समझ कर उपेक्षा न करें।**

उक्त सम्पूर्ण कथन का सार यह है कि जिसे नयों के माध्यम से वस्तुस्वरूप का सच्चा ज्ञान नहीं है और जिनवाणी में कथित व्यवहारवचनों का सहारा लेकर विषयसुख प्राप्त करानेवाले पुण्य को भला मानता हुआ, शुभभावों को धर्मरूप जानता हुआ अतिगृद्धता से विषयों में रत रहता है, उन्हें प्राप्त करानेवाले पुण्य परिणामों में धर्म मानकर उसी में संतुष्ट रहता है; ऐसा **अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव जबतक अपनी मिथ्यामान्यता को नहीं छोड़ता, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप सच्चे धर्म को नहीं जानता; तबतक सांसारिक सुख-दुखरूप दुख को भोगता हुआ संसार में ही भटकता रहेगा।**

यदि यह आत्मा समय पर नहीं चेता तो यह काल अनंत भी हो सकता है। तात्पर्य यह है कि वह अनंत कालतक अनंत दुख उठाता रहेगा।

अत: भला इसी में है कि हम पंचेन्द्रिय के विषय प्रदान करनेवाले पुण्य को पाप के समान ही बंध का कारण जानकर पाप के समान ही हेय माने, हेय जाने; और उससे विरत हों। **धर्म तो एकमात्र शुद्धोपयोग है, शुद्धपरिणति है, वीतराग परिणति है, वीतरागभाव है; वही उपादेय है, वही धारण करनेयोग्य है।**

अधिक क्या कहें - इस जीव को शुद्धपरिणति और शुद्धोपयोगरूप

वीतरागभाव ही एकमात्र शरण है।

इन्द्रियसुख दुःख ही हैं

(९०)

सपरं बाधासहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इन्दिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तहा॥

(हरिगीत)

इन्द्रियसुख सुख नहीं दुख है विषम बाधा सहित है।
है बंध का कारण दुखद परतंत्र है विच्छिन्न है॥

इन्द्रियों से भोगा जानेवाला सुख पराधीन है, बाधासहित है, विच्छिन्न है, बंध का कारण है, विषम है; अतः उसे दुःख ही जानो। तात्पर्य यह है कि **पुण्योदय से प्राप्त होने वाला सुख, सुख नहीं, दुःख ही है।**

यह गाथा प्रवचनसार परमागम की ७६वीं गाथा है। इस गाथा में यह बताया गया है कि इन्द्रियसुख सुख नहीं, दुःख ही है।

इस गाथा का भाव तत्त्वप्रदीपिका टीका में आचार्य अमृतचन्द्र इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''१. परसंबंधयुक्त होने से, २. बाधासहित होने से, ३. विच्छिन्न होने से, ४. बंध का कारण होने से और ५. विषम होने से वह इन्द्रियसुख पुण्यजन्य होने पर भी दुख ही है।

इन्द्रियसुख पर के संबंधवाला होता हुआ पराश्रयता के कारण **पराधीन** है; बाधासहित होता हुआ खाने, पीने और मैथुन की इच्छा इत्यादि तृष्णा की व्यक्तियों से युक्त होने से अत्यन्त **आकुल** है; विच्छिन्न होता हुआ असातावेदनीय का उदय जिसे च्युत कर देता है – ऐसे सातावेदनीय के उदय से प्रवर्तमान होता हुआ अनुभव में आता है, इसलिए **विपक्ष की उत्पत्तिवाला** है; बंध का कारण होता हुआ विषयोपभोग के मार्ग में लगी हुई रागादि दोषों की सेना के अनुसार कर्मरज के

घनपटल का संबंध होने के कारण परिणाम से दुःसह है और **विषम होता हुआ** हानि-वृद्धि में परिणमित होने से अत्यन्त अस्थिर है; इसलिए वह इन्द्रियसुख दुख ही है।

इसप्रकार यदि इन्द्रियसुख दुख ही है तो फिर पाप की भाँति पुण्य भी दुख का ही साधन है – यह सहज ही प्रतिफलित हो जाता है।''

आचार्य जयसेन इन्द्रियसुख और अतीन्द्रियसुख की तुलना करते हुए कहते हैं – इन्द्रियसुख पराधीन है तो अतीन्द्रियसुख **स्वाधीन** है, इन्द्रियसुख बाधासहित है तो अतीन्द्रियसुख **अव्याबाध** है, इन्द्रियसुख खण्डित हो जानेवाला है तो अतीन्द्रियसुख **अखण्ड** है, इन्द्रियसुख बंध का कारण है तो अतीन्द्रियसुख **बंध का कारण नहीं है** और इन्द्रियसुख विषम अर्थात् हानि-वृद्धि सहित है तो अतीन्द्रियसुख सम अर्थात् **हानि-वृद्धि रहित है।**

इसप्रकार उक्त पाँच विशेषताओं के कारण इन्द्रियसुख हेय और अतीन्द्रिय सुख उपादेय है।

यह एक दिशाबोधक सरल सुबोध गाथा है; जिसमें सांसारिक सुख की दुखरूपता को अत्यन्त मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसमें कहा गया है कि यह अज्ञानी जगत जिस विषयसुख की कामना करता है,जिसके लिए आकाश-पाताल एक कर देता है, सागर में गोता लगाता है, आकाश में गुलाचें भरता है और जमीन को फोड़कर पाताल में जाने को तैयार रहता है, इसप्रकार इस बेशकीमती नरभव को दाव पर लगा देता है; आखिर उस सुख में ऐसा है ही क्या ? **(क्रमशः)**

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र – श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com
ये सभी प्रवचन सामग्री अब vitragvani एप पर भी उपलब्ध है।

छहढाला प्रवचन

मनुष्य भव में मुनिधर्म

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंते अनुप्रेक्षा भाई।।१।।
इन चिन्तत सम सुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागे।
जब ही जिय आतम जाने, तब ही जिय शिवसुख ठाने।।२।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की पांचवीं ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

इन भावनाओं के पीछे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का जोर है। इनके बिना सच्ची भावना या सच्चा वैराग्य नहीं होता। भगवान-आत्मा सदा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। उसमें दृष्टि लगाकर स्थिर होना ही आत्महित का मार्ग है। स्वभाव के लक्ष्यपूर्वक इन बारह भावनाओं का चिंतन वैराग्य और आनन्द को उत्पन्न करने वाला है। सम्यग्दर्शन होने के बाद मुनि होने के लिए तथा मुनि होने के बाद चित्त को एकाग्र करने के लिए ये बारह भावनाएँ भानी चाहिए। ये भावनाएँ वैराग्य की माता हैं, आनन्द की जननी हैं - ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है। उन्हीं का अनुसरण करके पण्डित दौलतरामजी ने इस छहढाला की रचना की है। सम्यग्दर्शन के बाद अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर अनुभववाली मुनिदशा प्रकट होती है। सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा श्रावक को और श्रावक की अपेक्षा साधु को अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन की प्रचुरता रहती है। इन्द्रों और चक्रवर्तियों को भी वैसा आनन्द नहीं है, जैसा आनन्द वन-जंगल में वास करने वाले मुनिवरों को आत्मा के आश्रय से प्रकट होता है। वे महाव्रती, रत्नत्रयधारी मुनिराज

बड़भागी हैं, महान् पुरुषार्थी हैं; क्योंकि वे भव और भोग से उदासीन होकर मोक्ष के निकट पहुँच गये हैं। उन महाभागियों की क्या बात कहें, उनके महान् आनन्द की क्या बात कहें ? आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द की भूमि है, आनन्द का धाम है; उसमें लीन होनेवाले मुनियों को महान आनन्द की प्राप्ति होती है। ऐसे मुनिराज वैराग्य की दृढ़ता के लिए जैसी भावना भाते हैं, उसका यहाँ वर्णन चल रहा है।

जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं है, उसे तो धर्म हो ही नहीं सकता, तो श्रावकपना या मुनिपना कैसे होगा ? जिसमें से अतीन्द्रिय आनन्द प्रकट होता है, ऐसे आत्मा को जानकर जो उसमें एकाग्र होते हैं वही श्रावक या मुनि कहलाते हैं।

अहो ! मुनिराज तो इन्द्रों द्वारा भी वंदनीय हैं, वे परमेष्ठी में सम्मिलित हैं। ' णमो लोए सव्व साहूणं' इस पद में जिन्हें नमस्कार किया जाता है, वे साधु कैसे होंगे? वे तो गहरी डुबकी लगाकर अतीन्द्रिय आनन्द के समुद्र में समा जाने वाले होंगे। उन्हें यहाँ बड़भागी या महाभाग्यवान कहकर उनका बहुमान किया है, जिनके पास बहुत पैसा है या जो प्रधान बन गया है, उसे यहाँ भाग्यवान नहीं कहा; परन्तु जिसे धर्म का वैभव प्रकट हुआ है, उसी को यहाँ भाग्यशाली कहा है। यद्यपि सम्यग्दृष्टि भी परमार्थ से महाभाग्यशाली है। उसने सम्यक्त्व में भी अपूर्व अचिंत्य पुरुषार्थ किया है; तथापि मुनियों को तो उससे भी अधिक तीव्र पुरुषार्थ होता है और आनन्द का प्रचुर वेदन होता है। अहो ! ऐसे मुनियों के धर्मवैभव की क्या बात कहें ! वे सचमुच ही महाभाग्यशाली हैं, परम सुखी हैं।

आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय है; क्योंकि राग या इन्द्रियों के द्वारा उसका ग्रहण नहीं होता या इन्द्रियों का अतीन्द्रिय आत्मा में प्रवेश नहीं होता। भगवान आत्मा भी अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा अनुभव में आता है। उसे जानने

वाले सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जगत के पाँच इन्द्रियों के किसी भी विषय में सुख नहीं मानते। ऐसा धर्मात्मा होने पर भी धर्मी गृहस्थ को विषयों में अनन्तानुबंधी के अतिरिक्त किंचित् आसक्ति भी रहती है। यहाँ तो उससे भी आगे बढकर जिन्होंने वैराग्य भावना की दृढ़ता द्वारा विषयों की अल्प आसक्ति भी तोड़ दी है, उन मुनियों की वैराग्य भावना की बात चल रही है। ये भावनाएँ सुख की सहेली हैं।

अहा ! जिनकी परिणति आत्मा के अलावा सम्पूर्ण जगत से उदास है, ऐसे मुनिराज वैराग्य की वृद्धि तथा वस्तुस्वरूप का बारम्बार चिंतन करते हैं। जिसे आत्मा के स्वरूप की खबर नहीं है, जो बाह्य विषयों में तथा राग में ही सुख मानता है, ऐसे अज्ञानी को सच्चा वैराग्य नहीं होता। सम्यग्दृष्टि ने अपने अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद चखा है, वह उसी को सुखरूप मानता है, बाह्य विषयों में तथा राग में सुख नहीं मानता। यहाँ तो मुनिदशा के महावैराग्य की ऊँची बात है।

जो पुण्य-पाप को ही अपना स्वरूप मानकर राग में अटक रहा है, उसे कैसा वैराग्य और कैसा पुरुषार्थ ? ऐसे अज्ञानी को तो पुरुषार्थ रहित 'क्लीव' अर्थात् नपुंसक कहा है। जिसने अपनी चेतना को पुण्य-पाप रूप समस्त राग से भिन्न जाना, उसी को सच्चा वैराग्य और पुरुषार्थ होता है। ऐसे वीतरागी चेतनावाले मुनिराज (सम्यग्दृष्टि गृहस्थ भी) महापुरुषार्थी हैं। वे सदा चैतन्यस्वभाव के चिन्तनपूर्वक वैराग्यमयी बारह भावनाएँ भाते हैं।

इन भावनाओं में वस्तु के स्वरूप का यथार्थ चिन्तन है, कोई कल्पित विचार नहीं है। वस्तु-स्वरूप के यथार्थ चिन्तन से ही वीतरागभाव उत्पन्न होता है, जो कि संवर का कारण है; इसलिए ये भावनायें सभी को भाना चाहिए। बड़े-बड़े आचार्यों ने अनेक शास्त्रों में इन बारह अनुप्रेक्षाओं का वर्णन किया है। **(क्रमशः)**

नियमसार प्रवचन -

आचार में स्थिरता वाला प्रतिक्रमणमय

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार की गाथा ८५ पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। गाथा मूलतः इसप्रकार हैं -

मोत्तूण अणायारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ।।८५।।

(हरिगीत)

जो जीव छोड़ अनाचरण आचार में थिरता धरे।
प्रतिक्रमणमय है इसलिए प्रतिक्रमण कहते हैं उसे।।८५।।

जो जीव अनाचार छोड़कर आचार में स्थिरता करता है, वह जीव प्रतिक्रमण कहा जाता है; क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है।

(गतांक से आगे....)

धर्मीजीव समझते हैं कि हम तो वीतराग के भक्त हैं, अपने स्वभाव को चूककर पुण्य-पाप के साथ हमें मैत्री नहीं करना है; इसलिए वे अपनी शुद्धदृष्टि छोड़कर पुण्य-पाप के साथ लाभ मानने की बुद्धि का सेवन नहीं करते। ऐसे अनाचार को अत्यन्त छोड़कर वे अपने शुद्धात्मा में स्थित होते हैं। कैसा है भगवान आत्मा? जिसे किसी की उपमा नहीं दी जा सकती अर्थात् जो निरुपम है। स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्यवाला है; अनन्त-चतुष्टय शक्तिस्वरूप है। ऐसे आत्मा में आत्मा से स्थिर हो! देखो, यहाँ साधन बतलाया है। मन से, निमित्त से, अथवा व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम से स्थिर होने के लिए नहीं कहा; किन्तु अपने आत्मा से स्थिर होने के लिए कहा है। इसप्रकार जो अपने आत्मा के साधन द्वारा स्थिर होता है; उसको मन, वचन, काय, निमित्त, राग आदि उपचार-साधन कहे

जाते हैं। अपने आत्मा में स्थिर होने पर शुभाशुभभावोंरूप बाह्याचार छूट जाते हैं, इसलिए 'बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ' - ऐसा कहा है। इसप्रकार शांतरस अन्दर भरा है, उसमें एकाग्र होने से समतारूपी जलबिन्दु प्रगट होते हैं, उनसे आत्मा पवित्र होता है। चैतन्यस्वभाव तो समुद्र है और साधकदशा जलबिन्दु है। इसप्रकार वीतरागी समताभाव से पवित्र हुआ जाता है। व्यवहाररत्नत्रय से अथवा बाहर के संयोग से पवित्र नहीं हुआ जाता।

वे धर्मीजीव अपने स्वभाव में सम्पूर्ण स्थिर होकर केवलज्ञान प्रगट करके लोक के उत्कृष्ट साक्षी होते हैं।

आत्मस्वभाव का भान होना ही पवित्रता है और वही पुण्य है। संस्कृत में 'पुण्य' शब्द का अर्थ पवित्रता होता है। अज्ञानीजीव कहते हैं कि पंचकल्याणक करने से मोक्ष होता है - यह बात ठीक नहीं है, वह तो शुभराग है, अपूर्णदशा में शुभराग आता है। भरत महाराज ने तीन चौबीसी के बिम्ब बनवाये; किन्तु समझते थे कि यह शुभराग है, उससे रहित मैं शुद्ध आत्मा हूँ। इसप्रकार शुद्ध आत्मा की प्रतीति और एकाग्रता, निश्चयभक्ति है और जो निश्चय प्रगट करे, उसके शुभराग को व्यवहारभक्ति कहा जाता है। शुभराग के समय रागरहित ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ - ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करना धर्म है। यहाँ तो दृष्टि उपरान्त स्थिरता की बात है। जो अपने शान्तस्वभाव में लीन है - ऐसा पवित्र पुराण आत्मा रागरूपी क्लेश का क्षय करके, वीतरागता प्रगट करके, केवलज्ञान प्रगट करता है, वही लोक का उत्कृष्ट साक्षी होता है। आत्मा को पुराण कहा है। किसी का बनाया हुआ नहीं है, अनादि-अनन्त है। जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बंधे, जिस भाव से भव मिले तथा व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम आदि सब क्लेश हैं; उनका नाश करके स्वरूप में सर्वथा लीन होकर वीतरागता प्रगट करके केवलज्ञान प्रगट करे, वह उत्कृष्ट साक्षी है। सम्यग्दृष्टि जघन्य साक्षी है, केवलीभगवान उत्कृष्ट साक्षी हैं। इसप्रकार यह प्रतिक्रमण की विधि है। **(क्रमशः)**

समयसार की 47 शक्तियों पर प्रवचन

चिति शक्ति

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा समयसार की 47 शक्तियों पर किये गये प्रवचनों को यहाँ पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

(गतांक से आगे....)

ज्ञान अपरिमित/अनन्त है तथा इस ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा में आकाश के अनन्तप्रदेशों से अनन्तगुणी शक्तियाँ हैं।

उन अनन्तशक्तियों में से एक अजड़त्वस्वरूप चितिशक्ति है। **चिति नाम चेतना; इस चेतना में दर्शन-ज्ञान दोनों को समझना चाहिए।**

अहाहा.....! यहाँ कहते हैं कि भगवान! तेरे ज्ञानमात्र स्वरूप में एक चितिशक्ति है। वह अजड़त्वस्वरूप अर्थात् पूर्ण चैतन्यस्वरूप है।

अहा! यह शक्ति त्रिकाली द्रव्य-गुण में तो व्यापक है ही तथा त्रिकाली ध्रुव की दृष्टि होते ही पर्याय में भी व्याप्त हो जाती है। इसप्रकार **चितिशक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त रहती है। द्रव्य शुद्ध चैतन्यमय है, गुण शुद्धचैतन्यमय हैं और क्रम से प्रगट होनेवाली पर्यायें भी शुद्ध चैतन्यमय हैं। तात्पर्य यह है कि चितिशक्ति निर्मल चैतन्यमय परिणमती है।**

प्रश्न - उसमें जड़पना नहीं है - इसका क्या अर्थ है?

उत्तर - इसका अर्थ है कि उसमें देह, कर्म आदि जड़भावों का अभाव है और इन जड़भावों के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले पुण्य-पाप आदि भावों का भी उसमें अभाव है।

जिसप्रकार पत्थर के जोड़ में लोहे की छैनी डालने से पत्थर के दो टुकड़े हो जाते हैं, उसीप्रकार अन्तरंग में प्रज्ञाछैनी के पटकने से ज्ञान से राग अलग

हो जाता है। इसी का नाम धर्म है।

ये पुण्य-पाप आदि जो रागादिभाव हैं – इनमें चैतन्य का अभाव है। दया-दान, व्रत आदि के जो भाव हैं, वे सभी चैतन्य से रहित जड़ हैं। अभी लोगों को यह बात कठोर लगती है; क्योंकि उन्हें तो अभी तक यही उपदेश सुनने को मिला है कि दया करो, दान करो, व्रत करो, भक्ति करो, पाँच-पच्चीस हजार रुपये इन कार्यों में खर्च करो तो धर्म हो जायेगा।

भाई! करोड़ों रुपया भी दान में खर्च कर देवे और राग मंद न हो तो धर्म तो दूर, पुण्यबंध भी नहीं होता और यदि राग मंद हुआ तो मात्र पुण्यबंध होगा, धर्म नहीं। बापू! यह तो मार्ग ही जुदा है।

पुण्यभाव में भी चैतन्य शक्ति का अभाव है। अर्थात् जहाँ तुम हो वहाँ पुण्य-पाप के भाव नहीं हैं। आहाहा....! तुम तो अपरिमित चैतन्य के भण्डार हो।

प्रश्न – फिर हमें तीर्थसुरक्षा आदि में दान देने से क्या फायदा? फिर हम दान क्यों दे?

उत्तर – अरे बापू! दान देनेवाला तू होता कौन है? रुपया तो अपने आने के समय में आता है और जाने के समय चला जाता है। अरे! इसका कर्ता-हर्ता तू नहीं है। धर्मात्मा को तो अस्थिरतावश दान देने का विकल्प आता है, धर्मी को ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं है; परन्तु यह विकल्प मेरा कर्तव्य है, वह ऐसे दान देने के विकल्प का स्वामी नहीं है।

भाई! **जिसे विषय-कषाय के कार्यों में तो उत्साह आता है और दानादि में उत्साह नहीं आता – वह तो महापापी है।** आचार्य यह कहते हैं कि – **यदि तुझे मात्र दानादि में उत्साह है और आत्मा के अनुभव में उत्साह नहीं है, तब भी तू मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है।**

(क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : एक पुद्गल परमाणु के दो टुकड़े नहीं हो सकते, क्योंकि वह अत्यंत छोटा है, तो फिर उसमें अनन्त गुण किसप्रकार हो सकते हैं ?

उत्तर : एक परमाणु के दो भाग नहीं हो सकते; इतना सूक्ष्म होने पर भी उसमें अनन्त गुण (जीव के गुणों के समान) हैं। अहा हा ! ऐसा वस्तु का स्वभाव सर्वज्ञ ने देखकर, जानकर कहा है। आत्मा स्वयं ही सर्वज्ञस्वभावी है। एक परमाणु और उसके अनन्त परमाणुओं का एक स्कन्ध तथा ऐसे अनन्त स्कन्धों का एक महास्कन्ध – इन सब को जाननेवाला आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। इस सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की सच्ची श्रद्धा करनी है; क्योंकि श्रद्धा-ज्ञान को सम्यक् किये बिना समस्त तप-त्याग संसार भ्रमण के कारण हैं।

प्रश्न : एक सूक्ष्मपरमाणु अथवा सूक्ष्मस्कन्ध क्या अकेला स्थूलरूप से परिणमन करता है ?

उत्तर : नहीं, दूसरे स्थूलस्कन्ध के साथ मिलाने पर ही उसमें स्वयं स्थूलरूप परिणमन होता है। जिसप्रकार अनादि का अज्ञानी जीव, ज्ञानी के निमित्तपूर्वक ही ज्ञानी होता है; उसीप्रकार स्थूलस्कन्ध के निमित्तपूर्वक ही दूसरा सूक्ष्मस्कन्ध या परमाणु स्थूलरूप से परिणमन करता है। यह अनादि नियम है।

प्रश्न : एक परमाणु को आँख से या सूक्ष्मदर्शी यन्त्रादि से देख सकते हैं क्या ?

उत्तर : नहीं, पाँच इन्द्रियों सम्बंधी ज्ञान का वह विषय नहीं है। अवधिज्ञान से परमाणु को जान सकते हैं; किन्तु अवधिज्ञान बाहर के किसी साधन से होता नहीं, अवधिज्ञान आँख से जानता भी नहीं; तथा परमाणु को जान सके ऐसा सूक्ष्म अवधिज्ञान तो ज्ञानी के ही होता है। अर्थात् यह नियम है कि जो एकत्वरूप परम आत्मा को जानता है, वही परमाणु को जान सकता है।

प्रश्न : आपके समयसार में अध्यात्म का विषय सूक्ष्म है। हम तो यात्रा करने आये हैं; अत: हमें कोई सरल बात बताइये?

उत्तर : हम तो सबको भगवान देखते हैं। अन्दर नित्यानन्द प्रभु त्रिकाली चैतन्य भगवान विराजमान है, उसके आश्रय से धर्म होता है। विकल्प और पर का लक्ष छोड़कर अन्दर में भूतार्थस्वभावी भगवान का आश्रय ही करने योग्य कार्य है।

प्रश्न : वर्तमान में कोई केवलज्ञानी दिखाई नहीं देता; अत: केवलज्ञान सिद्ध नहीं होता ?

उत्तर : केवलज्ञान असिद्ध नहीं है - ऐसा कषायप्राभृत-जयधवला पुस्तक-1/44 में कहा है। क्योंकि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष द्वारा केवलज्ञान के अंशरूप ज्ञान की निर्बाधपने उपलब्धि होती है। अर्थात् मतिज्ञानादिक केवलज्ञान के अंशरूप हैं और उनकी उपलब्धि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सभी को होती है, इसलिए केवलज्ञान के अंशरूप अवयव प्रत्यक्ष हैं और अवयव के प्रत्यक्ष होने पर अवयवी (केवलज्ञान) को परोक्ष कहना युक्त नहीं है।

प्रश्न : अनेकान्त क्या है तथा जैनशासन और उसकी व्यवस्था क्या है ?

उत्तर : एक वस्तु में वस्तुपने की निपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकान्त है। जो वस्तु नित्य है, वही अनित्य है; जो एक है, वही अनेक है - इसप्रकार प्रकाशित होना ही जैनशासन का रहस्य है। अन्यप्रकार से कहें तो जो सत्ता को अभेद द्रव्यरूप कहे, वह निश्चय और जो उसी सत्ता को गुणभेदरूप कहे, वह व्यवहार - यह अनेकान्त है।

अनेकान्त में विशेष तो यह है कि जो वस्तु है उसी वस्तु में विरुद्ध दो शक्तियाँ हैं। नित्य और अनित्य वस्तु स्वयं ही है। यह ज्ञान की पर्याय शब्द सुनने से बदलकर नई उत्पन्न हुई है, वह शब्द से नहीं हुई, अपने से ही हुई है। ज्ञान की पर्याय बदलकर नई-नई होती है, वह शास्त्र बाँचने से नहीं होती, किन्तु अपने से ही होती है। स्वयं ही नित्य और अनित्य धर्मरूप दो विरुद्ध शक्तियों से प्रकाशित हो, उसको जैनशासन का अनेकान्त कहते हैं। एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अभाव है, वह अपने से है; पर से नहीं है - यही अनेकान्त है - यही जैनशासन है। पदार्थ की व्यवस्था अपने से ही व्यवस्थित होती है - यही जैनशासन की व्यवस्था है।

समाचार दर्शन -

21वाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सम्पन्न

जयपुर (राज.) : पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 5 से 12 अक्टूबर तक जिनागम के 22 विषयों का व्यवस्थित अध्ययन कराने वाला 21वाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर अनेक मांगलिक आयोजनों सहित संपन्न हुआ।

उद्घाटन समारोह - दिनांक 5 अक्टूबर को शिविर के उद्घाटन समारोह के अवसर पर आयोजित सभा में मुख्य अतिथि के रूप में श्री एन.के. सेठी जयपुर उपस्थित थे। विद्वानों के अन्तर्गत तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल आदि अनेक विद्वान उपस्थित थे।

शिविर-उद्घाटन सभा के अध्यक्ष श्री प्रेमचंदजी बजाज परिवार कोटा, ध्वजारोहण श्री निहालचंदजी घेवरचंदजी जैन जयपुर, प्रवचन मण्डप का उद्घाटन श्री शांतिलालजी चौधरी भीलवाड़ा, मंच उद्घाटन श्री अखिलजी जैन (U.S.A.) इन्दौर द्वारा संपन्न हुआ। इसके अतिरिक्त पण्डित टोडरमलजी के चित्र अनावरणकर्त्ता श्री ताराचंदजी अशोकजी जैन सौगानी जयपुर एवं गुरुदेवश्री के चित्र अनावरणकर्त्ता श्री कैलाशचंदजी प्रकाशचंदजी सेठी जयपुर थे। आगन्तुक विद्वानों व महानुभावों का डॉ. शांतिकुमारजी पाटील द्वारा तिलक लगाकर एवं श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल द्वारा माल्यार्पणकर स्वागत किया गया।

डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने अपने मार्मिक उद्बोधन में कहा कि यहाँ जयपुर, कोटा, बांसवाड़ा, भोपाल एवं उदयपुर विद्यालयों के छात्र-छात्राओं को जैन तत्त्वज्ञान, न्यायशास्त्र व करणानुयोग के गहन विषयों के साथ-साथ आध्यात्मिक विषयों का विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा गंभीर अध्ययन कराया जायेगा। इस अवसर पर श्री प्रेमचंदजी बजाज कोटा, श्री निहालचंदजी जैन जयपुर, श्री प्रकाशचंदजी सेठी जयपुर आदि महानुभावों ने भी सभा को संबोधित किया। सभा का संचालन ट्रस्ट के कार्यकारी महामंत्री श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने किया।

प्रवचन - शिविर में प्रतिदिन प्रात:काल पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचनों के पश्चात् ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा 'दर्शन-सूत्र-चारित्र-बोध एवं भाव पाहुड की जयमाला' पर मार्मिक प्रवचन हुये। रात्रिकालीन प्रवचनों में प्रतिदिन ब्र.सुमतप्रकाशजी खनियांधाना द्वारा 'सात तत्त्व' विषय पर हुये प्रवचनों के पूर्व डॉ. वीरसागरजी शास्त्री दिल्ली, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, डॉ. दीपकजी जैन जयपुर, पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल जयपुर एवं डॉ. राजेन्द्रकुमारजी बंसल अमलाई के व्याख्यानों का लाभ मिला।

पूजन विधान - प्रात:काल नित्य-नियम पूजन के साथ-साथ श्री दर्शन-सूत्र-चारित्र-बोध-भाव पाहुड विधान एवं सायंकाल सामूहिक जिनेन्द्र-भक्ति का आयोजन किया गया। विधि-विधान के समस्त कार्य डॉ. शांतिकुमारजी पाटील के निर्देशन में पण्डित जिनेन्द्रजी व

अनेकान्तजी शास्त्री द्वारा महाविद्यालय के छात्रों के सहयोग से संपन्न हुये। विधान के आमंत्रणकर्ता श्रीमती सुलेखा-दिनेशजी शाह जयपुर, श्री वीतराग-विज्ञान महिला मण्डल-टोडरमल स्मारक बापूनगर जयपुर, श्रीमती लीलादेवी प्रेमचंदजी जैन 'एडवोकेट' दौसा, श्री वीरेशजी सम्यक्जी कासलीवाल सूरत थे।

शिक्षण कक्षायें – ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना द्वारा सामान्य श्रावकाचार, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली द्वारा प्रवचनसार (सुखाधिकार) व मोक्षमार्गप्रकाशक (उभयाभासी मिथ्यादृष्टि), पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर द्वारा परोक्ष प्रमाण के भेद-प्रभेद व समयसार में विविध सम्बन्ध, डॉ. नरेन्द्रकुमारजी शास्त्री जयपुर द्वारा प्रमाणाभास व क्रमबद्धपर्याय, डॉ. योगेशजी शास्त्री अलीगंज द्वारा परीक्षामुख व आप्तपरीक्षा (ईश्वरकर्तृत्वनिषेध), डॉ. वीरसागरजी शास्त्री दिल्ली द्वारा आगम का स्वरूप व जैन न्याय का सामान्य परिचय, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर द्वारा नयचक्र व कालचक्र, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर द्वारा मोक्षमार्ग प्रकाशक (नौवां अध्याय) व सर्वार्थसिद्धि, पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री कोटा द्वारा भक्तामर स्तोत्र व मुक्ति का मार्ग, पण्डित प्रवीणजी शास्त्री बांसवाड़ा द्वारा चौथा-पांचवां गुणस्थान व उपयोग का स्वरूप/भेद-प्रभेद, पण्डित अच्युतकांतजी शास्त्री जयपुर द्वारा निमित्त-उपादान विषय पर कक्षाओं का लाभ मिला।

प्रात: 5.30 बजे पण्डित कमलचंदजी पिड़ावा की प्रौढ कक्षा के पश्चात् जिनवाणी चैनल पर डॉ.भारिल्ल एवं अरहंत चैनल पर गुरुदेवश्री के प्रवचनों का प्रसारण प्रवचन हॉल में ही बड़े पर्दे पर होता था। शिविर के आमंत्रणकर्ता श्रीमती रतनबाई ध.प.स्व. राजमलजी पाटनी की स्मृति में सुपुत्र श्री अशोककुमारजी पाटनी कोलकाता, श्रीमती शशि-सुरेशचंद जैन शिवपुरी, श्रीमती सुनीता ध.प. श्री प्रेमचंदजी बजाज एवं सुपुत्र तन्मय-ध्याता बजाज परिवार कोटा थे। शिविर में 16 विद्वानों के माध्यम से लगभग 500 साधर्मियों ने प्रतिदिन 16 घंटे तक चलने वाले तत्त्वज्ञान के कार्यक्रमों का लाभ लिया। इस अवसर पर हजारों घंटों के सी.डी./डी.वी.डी. प्रवचन तथा हजारों रुपयों का सत्साहित्य घर-घर पहुंचा। ●

शोक समाचार

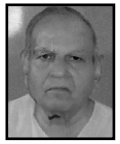

सागर (म.प्र.) निवासी श्री रमेशकुमारजी मोदी का दिनांक 5 अक्टूबर को 76 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया।

ज्ञातव्य है कि आप टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक पण्डित विकासजी शास्त्री के पिताजी एवं वर्तमान विद्यार्थी ज्ञायक जैन के दादाजी थे। आपकी स्मृति में टोडरमल महाविद्यालय हेतु 21000/- रुपये की राशि प्राप्त हुई।

दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

शिविर का समापन एवं पुरस्कार वितरण

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में 21वें आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का समापन एवं पुरस्कार वितरण समारोह डॉ. हुकमंचदजी भारिल्ल की अध्यक्षता में दिनांक 12 अक्टूबर की रात्रि में संपन्न हुआ।

कार्यक्रम में श्री महेन्द्रजी गंगवाल, श्री कैलाशचंदजी सेठी तथा ब्र. सुमतप्रकाशजी सहित समस्त विद्वत्गण व अध्यापकगण उपस्थित थे। सर्वप्रथम श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल एवं डॉ. शांतिकुमारजी पाटील ने अपने विचार व्यक्त किये। तत्पश्चात् सफल विद्यार्थियों को नकद राशि एवं प्रमाण-पत्र देकर पुरस्कृत किया गया।

अन्त में डॉ. भारिल्ल ने दीक्षान्त भाषण में कहा कि सभी विद्यालयों के छात्र एक हैं, सभी को मिलकर तत्त्वज्ञान सीखना व प्रचार-प्रसार करना है। पण्डित पीयूषजी शास्त्री ने शिविर की रिपोर्ट प्रस्तुत हुये शिविर में सहयोग करने वाले सभी विद्वानों एवं अध्यापकों का आभार व्यक्त किया। पांचों महाविद्यालयों के (जयपुर=185, बांसवाड़ा=51, कोटा=44, भोपाल=18, उदयपुर=20) कुल 318 छात्रों ने परीक्षा दी, जिसमें विशेष स्थान प्राप्त करने वाले छात्र इसप्रकार हैं -

उपाध्याय वर्ग में जयपुर से अक्षत नाके निम्बाहेड़ा ने प्रथम व संयम पुजारी खनियांधाना ने द्वितीय स्थान, **कोटा** से पीयूष जैन खड़ैरी ने प्रथम व हिमेश जैन शाहगढ ने द्वितीय स्थान, **भोपाल** से नवीन जैन बैंसा ने प्रथम व पीयूष जैन गैरतगंज ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

शास्त्री प्रथम वर्ष में जयपुर से पवित्र जैन आगरा ने प्रथम व आप्त अनुशीलन जैन दमोह ने द्वितीय स्थान, **कोटा** से विपिन जैन किशनपुरा ने प्रथम व प्रभात जैन घुवारा ने द्वितीय स्थान, **बांसवाड़ा** से संदीप जैन मौ ने प्रथम व सुशांत चौगुले पंढरपुर ने द्वितीय स्थान, **उदयपुर** से समयसत्य प्रधान केरवना ने प्रथम व प्रांजल जैन बानपुर ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

शास्त्री द्वितीय-तृतीय वर्ष में जयपुर से दुर्लभ जैन गुढाचन्द्रजी ने प्रथम व प्रतीक जैन विदिशा ने द्वितीय स्थान, **कोटा** से अंशुल जैन मुंगावली ने प्रथम व विवेक जैन बण्डा ने द्वितीय स्थान, **बांसवाड़ा** से भूषण कालेगोरे केज ने प्रथम व जीवेश जैन पिड़ावा ने द्वितीय स्थान, **उदयपुर** से प्रियंका जैन गुना ने प्रथम व शाविका जैन चित्तौड़गढ ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

कार्यक्रम का मंगलाचरण रजत जैन कापरेन एवं संचालन पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री ने किया।

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय की –

साप्ताहिक गोष्ठियाँ संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में टोडरमल महाविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा आयोजित गोष्ठियों के क्रम में दिनांक 16 सितम्बर को '**जैन सिद्धांतों की नींव-पाठमालाएं**' विषय पर गोष्ठी आयोजित हुई, जिसकी अध्यक्षता पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल जयपुर ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में दिव्यांश जैन अलवर एवं सर्वज्ञ जैन बरगी रहे। गोष्ठी का मंगलाचरण विराग बेलोकर (उपाध्याय कनिष्ठ) एवं संचालन उपाध्याय वरिष्ठ के यश जैन व अनिमेष भारिल्ल ने किया। आभार प्रदर्शन जिनकुमारजी शास्त्री ने किया।

दिनांक 14 अक्टूबर को '**जिनरहस्य उद्घाटक-छहढालात्रयी : एक अनुशीलन**' विषय पर गोष्ठी आयोजित हुई, जिसकी अध्यक्षता ब्र.सुमतप्रकाशजी खनियांधाना ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री प्रवीणभाई ऑस्ट्रेलिया थे।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में उपाध्याय वर्ग से दिव्यांश जैन सागर एवं शास्त्री वर्ग से निखिल जैन व स्वप्निल जैन रहे। गोष्ठी का संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष के दीपक जैन व सपन जैन ने किया। आभार प्रदर्शन जिनेन्द्रजी शास्त्री ने किया।

दिनांक 21 अक्टूबर को '**सम्यग्दर्शन में प्रयोजनभूत जीवादि सात तत्त्व**' विषय पर गोष्ठी आयोजित हुई, जिसकी अध्यक्षता पण्डित प्रमोदजी शास्त्री शाहगढ ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में उपाध्याय वर्ग से कपिल जैन (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं शास्त्री वर्ग से सम्यक् सिंघई (शास्त्री द्वितीय वर्ष) रहे। संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष के सिद्धार्थ जैन व जितेन्द्र जैन ने किया। आभार प्रदर्शन जिनेन्द्रजी शास्त्री ने किया।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

31 अक्टूबर	मुम्बई	शिखरजी यात्रा कार्यक्रम
4 से 8 नवम्बर	देवलाली	दीपावली
30 नव. से 2 दिस.	उदयपुर	वेदी प्रतिष्ठा
7 से 12 दिसम्बर	अहमदाबाद	पंचकल्याणक
19 से 24 दिसम्बर	गौरझामर	पंचकल्याणक
26 दिस.से 1 जन.2019	जयपुर	विदेशियों हेतु शिविर
16 से 21 जनवरी 2019	हेरले	पंचकल्याणक

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2018-20*

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में विराजमान होने वाली श्री सीमंधर भगवान की विश्व की सबसे बड़ी स्फटिक मणि की प्रतिमा

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय, नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**